इकाई 7 रस निष्पत्ति एवं साधारणीकरण

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 रस निष्पत्ति का आशय और प्रक्रिया

7.2.1 भट्टलोलट का उत्पत्तिवाद

7.2.2 शंकुक का अनुमितिवाद

7.2.3 भट्टनायक का भोगवाद (भुक्तिवाद)

7.2.4 अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद

7.3 साधारणीकरण का अभिप्राय

7.4 साधारणीकरण के संबंध में विभिन्न मत : संदर्भ-संस्कृत साहित्य

7.4.1 आचार्य अभिनवगुप्त

7.4.2 आचार्य विश्वनाथ

7.4.3 पंडितराज जगन्नाथ

7.5 सारांश

7.6 अवधारणात्मक शब्द

7.7 उपयोगी पुस्तकें

7.8 बोध प्रश्न

7.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.0 उद्देश्य

पिछली इकाई में आपने रस संप्रदाय से परिचय प्राप्त किया होगा रस की अवधारणा एवं उसके विभिन्न अंगों को जानने के बाद रस निष्पत्ति एवं साधारणीकरण की इस इकाई के माध्यम से आप :

- रसानुभूति की प्रक्रिया के बारे में जान सकेंगे,
- रस निष्पत्ति की मूल अवधारणा और विभिन्न आचार्यों के मतों से परिचित हो सकेंगे,
- साधारणीकरण की प्रक्रिया को समझ पाएंगे, और
- साधारणीकरण के विषय में संस्कृत काव्यशास्त्र के आचार्यों के विभिन्न मतों के बारे में जान सकेंगे।

BHDC-106.indd 88 19-03-2021 08:51:35

7.1 प्रस्तावना

रस के विषय में विस्तृत विवेचना सर्वप्रथम भरत मुनि के ग्रंथ 'नाट्यशास्त्र' में मिलता है। संस्कृत काव्यशास्त्र की परंपरा में 'काव्यास्वाद' को ही रस कहा गया है। रस को 'लोकोत्तर चमत्कार प्राण' और 'ब्रह्मानंद सहोदर' रूप भी कहा गया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि काव्य को पढ़ने और नाटक को देखने से प्राप्त होने वाला आनंद सामान्य नहीं होता उसमें कुछ अलौकिकता होती है। यह लौकिक प्रमाण का विषय नहीं बन सकता है और न ही उसे कहकर बताया या समझाया जा सकता है। वैसे तो रस किसी भी पदार्थ का सारतत्व है। लेकिन साहित्य का रस उसके सौंदर्य और आनंद दोनों को बताता है। रस संप्रदाय को सर्वोपरि मानने वाले संस्कृत आचार्य तो काव्य में रस की महत्ता को सर्वोपरि बताते ही हैं। अन्य संप्रदायों के प्रवर्तक और समर्थक भी रस के महत्व से इंकार नहीं करते हैं।

भरत मुनि द्वारा रस नाम दिए जाने के पीछे उसके 'आस्वाद्यत्व' की भूमिका है। वे कहते हैं जिस प्रकार नाना भांति के व्यंजनों से संस्कृत (परिष्कृत) अन्न को खाने वाले पुरुष रसों का आस्वादन करते हैं तथा हर्षादि को प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार नाना प्रकार के भावों और अभिनय द्वारा व्यक्त किए गए वाचिक, आंगिक तथा सात्विक अभिनय से युक्त स्थायी भाव का सहृदय प्रेक्षक आस्वाद करते हैं और हर्षादि को प्राप्त करते हैं। भोजन का स्वाद रसना (जिह्वा) ग्रहण करती है जबकि काव्यास्वाद सहृदय के मन को मिलता है। यद्यपि काव्यास्वाद प्राप्त करने की प्रक्रिया को समझने के क्रम में आचार्य रामचंद्र शुक्ल की बहु-संदर्भित व्याख्या को ध्यान में रखना आवश्यक है– 'जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस-दशा कहलाती है।'

7.2 रस निष्पत्ति का आशय और प्रक्रिया

भरत मुनि का सूत्र है– 'विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगाद्रस निष्पत्तिः' इसका अर्थ है विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। भरत मुनि के अनुसार रस नाटक का बहुत महत्वपूर्ण तत्व है क्योंकि रस के बिना नाटक का कोई अर्थ स्थापित नहीं होता, न तो विभावादि का अस्तित्व होगा, न ही वह बोधगम्य हो सकेंगे। वे उदाहरण के साथ अपनी बात समझाते हैं कि जिस प्रकार नाना व्यंजनों, औषधियों तथा द्रव्यों के संयोग से (भोज्य) रस की निष्पत्ति होती है, उसी प्रकार नाना भावों के संयोग से (नाट्य) रस की निष्पत्ति होती है। जिस प्रकार गुड़ आदि द्रव्यों, व्यंजनों और औषधियों से षाडवादि रस बनते हैं उसी प्रकार अनेक भावों से मिलकर स्थायी भाव भी रसत्व को प्राप्त होते हैं।

यहाँ समझने वाली बात यह है कि रस निष्पत्ति कहाँ होती है? कवि में, कवि निबद्ध पात्रों में, अभिनय करने वाले अभिनेता में अथवा सहृदय में। रस निष्पत्ति के व्याख्याकार आचार्यों ने इस विषय पर चर्चा की है और इनमें से किसी एक में और रस निष्पत्ति का निरूपण किया है। भरत मुनि के इस सूत्र के बीज शब्द हैं– संयोग और निष्पत्ति।

भरत मुनि द्वारा व्यवहृत इन दोनों शब्दों के वास्तविक अर्थ तक पहुंचने के प्रयास विभिन्न विद्वानों द्वारा किए गए। इन विद्वानों के सिद्धांत और व्याख्याएँ दरअसल विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव के संयोग से होने वाली 'रस निष्पत्ति' क्या है? वह कैसे होती है? तथा किस में होती है? इसकी ही खोज है।

BHDC-106.indd 89 19-03-2021 08:51:35

7.2.1 भट्टलोलट का उत्पत्तिवाद

भट्टलोलट भरत मुनि के रस निष्पत्ति के सूत्र के पहले व्याख्याता हैं। अभिनव गुप्त ने अपने ग्रंथ 'अभिनव भारती' में उनके द्वारा प्रतिपादित मत का उल्लेख किया है। भट्टलोलट के यहाँ संयोग शब्द का अर्थ संबंध और निष्पत्ति का अर्थ उत्पत्ति है। इनके मतानुसार रस की उत्पत्ति मूल पात्र में होती है। विभावादि का पात्रगत स्थायी भाव से संयोग होने पर पात्रगत स्थायी भाव परिपूर्ण होता है। यह परिपुष्ट स्थायी भाव ही रस है। 'उपचित' स्थायी भाव रस है, 'अनुपचित' स्थायी भाव रस से भिन्न 'स्थायी भाव' कहलाता है। स्थायी भाव और रस का भेदक तत्व 'उपचिति' है। रस वस्तुतः रामादि अनुकार्य पात्रों में रहता है एवं अनुसंधान के बल से वह नट में प्रतीत होता है। इसे इस प्रकार समझा जा सकता है कि अभिनय करने वाला राम की वेशभूषा में (जिसे हम साधारण बोलचाल में राम बनना कहते हैं) मंच पर आता है। दर्शक मंच पर उपस्थित इस राम पर रामत्व का आरोप करता है अर्थात उसे ही राम मान लेता है। यह मानना या प्रतीति ही दर्शक द्वारा रस के आस्वाद का माध्यम बनती है

- भट्टलोलट के मतानुसार रस मूल पात्र में स्थित होता है। विभाव का स्थायी भाव से संयोग होने पर रस निष्पत्ति होती है। अतः विभाव और स्थायी भाव में उत्पादक-उत्पाद्य संबंध है। अर्थात विभाव उत्पन्न करने वाले तथा रस उत्पन्न हुआ की स्थिति में होते हैं।
- व्यभिचारी या संचारी भाव से रस की पुष्टि होती है इसलिए व्यभिचारी भाव और रस में पोषक-पोष्य का संबंध है अर्थात व्यभिचारी भाव पोषण करते हैं और जिसका पोषण किया जाता है वह रस है।
- अनुभाव तथा स्थाई भाव में कार्य-कारण संबंध है। अनुभाव रूपी कारण से स्थायी भाव, रस रूपी कार्य में परिणत होता है।

भट्टलोलट के मत की सीमा विद्वानों द्वारा यह बताई जाती है कि वह मूल पात्र में रस की निष्पत्ति की बात करते हैं किंतु यह स्पष्ट नहीं करते कि मूल पात्र वास्तविक राम-सीता हैं या कवि निबद्ध राम-सीता। इसी से जुड़ा प्रश्न है कि यदि पात्र ऐतिहासिक न होकर काल्पनिक हो तो रस की निष्पत्ति कहाँ होगी? प्रतीति से सहृदय को आनंद किस प्रकार प्राप्त हो सकता है?

7.2.2 शंकुक का अनुमितिवाद

भरत मुनि के सूत्र के दूसरे व्याख्याता आचार्य शंकुक थे। इन्होंने अपनी व्याख्या में दो नए शब्दों का प्रयोग किया है– अनुकृति एवं अनुमिति। सामान्यतः इनके सिद्धांत को समझने के क्रम में निष्पत्ति का अर्थ 'अनुमिति' से लिया गया है तथा संयोग से तात्पर्य है– अनुमाप्य-अनुमापक। विभावादि अनुमापक और रस अनुमाप्य। वे भी भट्टलोलट के समान ही 'रस' की स्थिति मूल पात्र में मानते हैं। नट अथवा अभिनेता उसका अनुकरण करता है। शंकुक के मत में अभिनय-तत्व का विशेष महत्व है। इनकी स्थापना के अनुसार नट/अभिनेता मूल पात्रों को अपने अभिनय कौशल द्वारा इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि दर्शक उसमें ही मूल पात्रों का अनुमान कर लेता है। भट्टलोलट के यहाँ दर्शक, अभिनेता पर मूल पात्रों का आरोप करता था। शंकुक के यहाँ दर्शक अभिनेता में मूल पात्रों का अनुमान करता है। शंकुक इस अनुमान को 'चित्र-तुरंग न्याय' के माध्यम से स्पष्ट करते हैं। भागते हुए अश्व के 'चित्र' को

देखकर, यह जानते हुए भी कि यह चित्र है, देखने वाले की प्रतिक्रिया होती है कि अश्व भाग रहा है। इसी प्रकार रंगमंच के समुचित वातावरण में अभिनेता का अभिनय कौशल दर्शकों को मूल पात्रों की अनुमिति कराने में सक्षम होता है।

यद्यपि मूल पात्रों की नट (अभिनेता) द्वारा अनुकृति के मूल आधार पर स्थापित इस व्याख्या के संबंध में कुछ विद्वान इसे 'अनुकृतिवाद' कहना उचित समझते हैं क्योंकि अनुमिति (अनुमान) दरअसल दर्शक या भावक द्वारा घटित हो रही है। इस अनुमिति से उसे आनंद की प्राप्ति हो रही है। अतः अनुमति आस्वाद का साधन है अनुकृति का नहीं।

शंकुक के मत पर जो प्रश्न उठाए जाते हैं उनमें से प्रमुख है कि मात्र अनुमान से आनंद की अनुभूति नहीं हो सकती है। रस यदि अनुकरण रूप है तो यह अनुकरण किसकी दृष्टि से होता है? दर्शक, नट अथवा विवेचक की दृष्टि से? वस्तुतः अनुकरण के लिए प्रमाण चाहिए।

7.2.3 भट्टनायक का भोगवाद (भुक्तिवाद)

भरत मुनि के रस निष्पत्ति के सिद्धांत के तीसरे व्याख्याकार भट्टनायक हैं। इनकी व्याख्या रस निष्पत्ति के सिद्धांत को एक नया कोण देती है। उनके मतानुसार रस की न तो उत्पत्ति होती है न प्रतीति और न ही अभिव्यक्ति। रस की 'भुक्ति' होती है अर्थात रस का भोग किया जाता है। भट्टनायक के मतानुसार, निष्पत्ति का अर्थ हुआ 'भावित होना' अथवा 'भाविति'। विभावादि के साथ संयोग होने पर स्थायी भाव भावित होकर रस रूप में परिणत होता है। संयोग से तात्पर्य है भावक-भाव्य संबंध। विभावादि भावक हैं और स्थायी भाव, भाव्य।

अपने मत का प्रतिपादन करने के क्रम में भट्टनायक तीन काव्य-व्यापारों की व्यवस्था देते हैं– अभिधा, भावकत्व और भोजकत्व। भट्टनायक द्वारा प्रस्तुत अभिधा-व्यापार विशिष्ट है। भावकत्व और भोजकत्व अभिधा से अलग शब्द शक्तियाँ नहीं हैं बल्कि अभिधा व्यापार के ही भाग हैं। रस निष्पत्ति के लिए अनिवार्य पृष्ठभूमि बनाने के कारण 'भावकत्व व्यापार' सबसे महत्वपूर्ण होता है इसी व्यापार के द्वारा काव्यगत अभिधा विलक्षण हो जाती है। वाच्यार्थ बोध के विषय में काव्य और शास्त्र में अभिधा शक्ति की भूमिका एक जैसी ही होती है। लेकिन काव्य में रस निष्पत्ति साध्य होने के कारण अर्थ के कल्पनात्मक स्तर पर ग्रहण और सामाजिकगत चित्तवृत्ति की उसके अनुसार ही परिणति की भी आवश्यकता होती है, जो शुद्ध अभिधा नहीं कर सकती। यही काम भट्टनायक कल्पित विशिष्ट अभिधा व्यापार से संपन्न होता है।

अभिधा के द्वारा दर्शक/भावक को काव्य के शब्दार्थ इत्यादि का सामान्य बोध होता है (इसे इस प्रकार समझा जा सकता है कि काव्य या नाटक में यह सीता है, यह राम है, यह जनक तनया एवं रामप्रिया सीता है, यह दशरथतनय एवं सीता पति राम है आदि का सामान्य बोध)। भावकत्व के माध्यम से दर्शक कुछ समय के लिए अपनी निजता (यह मैं, वह पर इत्यादि) को विस्मृत कर देता है और इसी बिंदु पर विभावादि का साधारणीकरण होता है। नाटक के आरंभ में दर्शक को अभिनेता के वैशिष्ट्य का भी बोध होता है और अपनी पृथकता और निजता का भी। जैसे-जैसे नाटक आगे बढ़ता है पात्रों का वैशिष्ट्य और दर्शक की इयत्ता दोनों विलयित होते हैं। यहीं पर साधारणीकरण के द्वारा रस भावित होता है। भट्टनायक के अनुसार, साधारणीकृत स्थायी भाव रस नहीं है, बल्कि वह रस रूप में आस्वाद्य होने के योग्य हो जाता है,

अर्थात भावकत्व व्यापार के द्वारा स्थायी भाव का साधारणीकरण होते ही रस निष्पत्ति नहीं हो जाती बल्कि रस निष्पत्ति के लिए समुचित भूमिका तैयार हो जाती है। रस की भुक्ति (भोग) इसी भाविति के बाद की प्रक्रिया है। इसी को भोजकत्व व्यापार के रूप में जाना गया है। सहृदय दर्शक बाधारहित चित्त द्वारा विभावादि द्वारा भावित रस का भोग करता है। रस का यह आस्वाद ब्रह्मास्वाद के समान माना गया है। इस व्याख्या में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि रस का स्थान दर्शक/पाठक/सहृदय का चित्त है। पूर्व के व्याख्याकार भट्टलोलट एवं शंकुक दोनों ही रस की अवस्थिति मूल पात्रों में बताते हैं लेकिन भट्टनायक के अनुसार रस की स्थिति सहृदय के चित्त में है और वह ही काव्य के भावकत्व और भोजकत्व व्यापार की क्रियाभूमि है।

भट्टनायक के 'साधारणीकरण' के सिद्धांत को तो परवर्ती आचार्यों से खूब महत्व मिला लेकिन काव्य के अभिधा, भावकत्व और भोजकत्व व्यापार का कोई शास्त्रीय आधार न होने का आक्षेप उनके प्रतिपादित सिद्धांत पर लगाया जाता रहा है।

7.2.4 अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद

रस निष्पत्ति के सिद्धांतकारों में अभिनवगुप्त का स्थान चौथा है। वे अपने पूर्ववर्ती व्याख्याकारों के मतों का परीक्षण करके अपने मत की स्थापना करते हैं। इनके द्वारा लिखे गए दो ग्रंथ उपलब्ध होते हैं– 'अभिनव भारती' और 'ध्वन्यालोक लोचन'। अभिनव गुप्त के अनुसार सहृदय को रस की 'अभिव्यक्ति' होती है। ये निष्पत्ति का अर्थ 'अभिव्यक्ति' तथा संयोग का अर्थ 'व्यंग्य-व्यंजक' संबंध से करते हैं।

उनका मत है कि पानी का संस्पर्श पाकर मिट्टी से सोंधी खुशबू निकलने लगती है। वह खुशबू कहीं से आती नहीं बल्कि मिट्टी में ही मौजूद होती है। बस पानी और वर्षा बूंदों का योग उस खुशबू का संवाहक बनता है। ठीक उसी तरह से सामाजिक के चित्त में स्थायी भाव रूप में रस पहले से ही मौजूद होता है, जो विभावादि के संपर्क से 'अभिव्यक्त' हो जाता है। विभावादि व्यंजक हैं और रस व्यंग्य।

रस निष्पत्ति की प्रक्रिया में साधारणीकरण व्यापार का अलौकिक तत्व बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका में होता है। रसानुभव देशकाल, स्व-पर, व्यक्तिगत राग-द्वेष की चेतना से मुक्त होने पर होता है इसीलिए रस की अभिव्यक्ति लोकोत्तर आनंद से युक्त होती है। 'अभिज्ञान शाकुंतलम' से उदाहरण देते हुए वे आखेटक दुष्यंत के भय से डरकर भागते मृग शावक का उदाहरण सामने रखते हैं। जिसे पढ़ते ही सहृदय को सबसे पहले उसके वाच्यार्थ का बोध होता है, लगभग उसी क्षण एक अन्य प्रतीति होती है जो विशेष– देशकाल, व्यक्ति निरपेक्ष प्रतीति होती है। यही प्रतीति रसात्मक व्यंग्यार्थ है। अभिनवगुप्त कहते हैं कि देशकालबद्ध विशिष्ट मृग शावक (शकुंतला का स्नेहपात्र) का भय भी विशिष्ट है और दुष्यंत द्वारा एक स्थान विशेष में (ऋषि के आश्रम में) उसका पीछा किया जाना भी विशिष्ट है। लेकिन काव्य की विशेषताओं और नाटक में अभिनेयता के कौशल से संपूर्ण प्रसंग का साधारणीकरण हो जाता है और सब कुछ देशकाल व्यक्ति संबंध से मुक्त हो जाता है। संबद्ध पात्रों और भावों के नियत संबंध विगलित हो जाते हैं और विभावादि के साक्षात्कार से सहृदय की चेतना भी राग-द्वेष से मुक्त हो जाती है।

अभिनव गुप्त के अनुसार रस की अभिव्यक्ति और उसकी भुक्ति (भोग) में कोई अंतर नहीं होता। अभिव्यक्ति भोग रूप ही होती है।

BHDC-106.indd 92 19-03-2021 08:51:35

चारों आचार्यों ने भरत मुनि के रस निष्पत्ति के सिद्धांत का विश्लेषण अपने-अपने तरीके से किया है। अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के मत का विश्लेषण करते हुए अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन करने वाले अभिनव गुप्त को रस निष्पत्ति के व्याख्याकारों में खूब महत्व मिला। रस निष्पत्ति के सिद्धांत पर हिंदी के विद्वानों के बीच भी चर्चा-परिचर्चा होती रही।

7.3 साधारणीकरण का अभिप्राय

रस निष्पत्ति की प्रक्रिया को समझते हुए आप 'साधारणीकरण' शब्द से परिचित हो चुके हैं। आपने किसी दृश्य-विधा (नाटक, धारावाहिक, फिल्म इत्यादि) को देखते हुए कुछ लोगों को रोते हुए देखा होगा। इसी तरह दुष्ट को दंडित करते हुए नायक द्वारा मारपीट के दृश्यों में, दर्शकों की तनी मुट्ठियाँ भी कभी-न-कभी जरूर देखी होंगी। बड़े संघर्ष के बाद मिले, बिछड़े हुए माँ-बेटे का और जमाने की बाधाओं को दूर करते हुए प्रेमी-प्रेमिका का मिलना भी गहरे संतोष का विषय कभी-न-कभी जरूर बना होगा। गहरे संघर्ष की हताशा दृश्य ही नहीं, पाठ्य सामग्री के रूप में भी गहरा प्रभाव छोड़ती है। साहित्य का अध्ययन करने वाला कौन व्यक्ति ऐसा होगा जो निराला की 'राम की शक्ति पूजा' कविता में गहरी हताशा के क्षणों में राम की इस मनःस्थिति से विचलित न हुआ हो –

> 'धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध,
>
> धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध!
>
> जानकी! हाय, उद्धार प्रिया का हो न सका!'

सिद्धांत के रूप में साधारणीकरण पर चर्चा करेंगे, पहले यह समझने का प्रयास करते हैं कि यह प्रक्रिया क्या है– आप कोई नाटक देख रहे हैं, कोई पाठ्य-सामग्री पढ़ रहे हैं। पहले-पहल आपमें यह बोध होता है कि आप नाटक देख रहे हैं, कविता पढ़ रहे हैं। यहाँ अभिनेता है जो राम का अभिनय कर रहा है अथवा यह कवि द्वारा चित्रित पात्र है। नाटक की प्रस्तुति और कविता के भाव में डूबते हुए धीरे–धीरे आप भूलने लगते हैं कि आप नाटक देख रहे हैं या कविता पढ़ रहे हैं। अभिनेता और चरित्र भी बीच से हट जाते हैं। एक बिंदु वह आता है जहाँ आप उनके सुख में सुखी और दुःख में दुःखी होने लगते हैं। डूबकर देखते या पढ़ते हुए, सब कुछ भूलकर नाटक के पात्र के साथ जीने लगना ही साधारणीकरण होता है। साधारणीकरण, असाधारण को साधारण बना देता है। पात्र या चरित्र की विशिष्टता का लोप हो जाता है और दर्शक या पाठक भी मैं और ममेतर (मेरा और मेरा नहीं) से मुक्त हो जाता है। दरअसल इसी दशा में रस का अलौकिक आनंद भी प्राप्त होता है।

7.4 साधारणीकरण के संबंध में विभिन्न मत : संदर्भ-संस्कृत साहित्य

साधारणीकरण की अवधारणा का पहली बार प्रयोग रस निष्पत्ति के व्याख्याता भट्टनायक के यहाँ मिलता है। यही वह अवधारणा है जिसके माध्यम से रस निष्पत्ति की प्रक्रिया में सहृदय अर्थात दर्शक/पाठक केंद्र में आया। भट्टलोलट और शंकुक के यहाँ वह आरोप और अनुमिति के माध्यम से ही रस का अभिग्रहण करता रहा। साधारणीकरण के सिद्धांत ने दर्शक अथवा पाठक को एक तरह से कृति में भागीदारी

BHDC-106.indd 93 19-03-2021 08:51:35

दी। भट्टनायक ने विभावादि के साधारणीकरण की बात कही। यह साधारणीकरण ही उनके भावकत्व-व्यापार का मूल है। उनके मतानुसार काव्य का वैशिष्ट्य यही है कि वह एक विशिष्ट प्रक्रिया के माध्यम से विशिष्ट विभावादि को उनके विशिष्ट (देश, काल, व्यक्ति) संबंधों से मुक्त कर उनका साधारणीकरण कर देता है। भट्टनायक के अनुसार काव्य का एक विशेष लक्षण दोष रहित और गुणालंकार सहित होना है। इस लक्षण के कारण काव्य में विभावादि का साधारणीकरण कर देने की एक विशेष क्षमता आ जाती है जो काव्येतर शब्दार्थ में नहीं होती। विभावादि के वैशिष्ट्य से मुक्ति की प्रक्रिया अधूरी होगी यदि सामाजिक उनके प्रति मम् और ममेतर के भाव से मुक्त नहीं होगा। विभावादि की विशिष्टता का लोप और सामाजिक का उनका साधारणीकृत रूप, निरपेक्ष भाव से ग्रहण कर पाना भी आवश्यक है। साधारणीकरण किसका होता है तथा किस प्रकार से होता है इस पर विभिन्न विद्वानों ने विचार व्यक्त किया है।

7.4.1 आचार्य अभिनवगुप्त

भट्टनायक के भावकत्व व्यापार से असहमति रखते हुए भी अभिनवगुप्त उनके साधारणीकरण के सिद्धांत को स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार साधारणीकरण विभावादि का ही नहीं होता, स्थायी भाव का भी होता है। स्थायी भाव का साधारण ीकरण विभावों द्वारा होता है।

- इनके मत के अनुसार रसास्वादन व्यंजना-व्यापार से ही संभव है। व्यंजना-व्यापार काव्यार्थ को कल्पना द्वारा ग्रहण करने योग्य बनाते हुए उसे साधारणीकृत कर देता है जिससे वह आस्वाद के योग्य बन जाता है। साधारणीकरण के लिए इन तीन का होना जरूरी है –

- विभावादि-आलंबन, आश्रय, व्याभिचारी भाव और अनुभाव

- सहृदय की चेतना, तथा

- सहृदय के चित्त में वासना रूप में मौजूद स्थायी भाव।

- अभिनव गुप्त के अनुसार, सामान्यतः किसी वस्तु विशेष के प्रति सामाजिक का मनोभाव तीन प्रकार का हो सकता है। कोई वस्तु या तो उसे पसंद होगी, नापसंद होगी या फिर उदासीनता का भाव होगा। इस तरह वस्तु के प्रति उसका स्वकीय भाव होगा अथवा शत्रु भाव होगा या फिर तटस्थ भाव होगा। रस की प्रतीति में ये तीनों स्थितियाँ नहीं हो सकतीं। विभावादि के प्रति सामाजिक का स्वकीय भाव नहीं होता, वहाँ मित्र और शत्रु भाव भी नहीं होता, न ही तटस्थ भाव होता है। तब भी सामाजिक रसास्वाद कर पाता है। लोक में ऐसा नहीं है। इसीलिए अभिनव गुप्त विभावादि के स्वरूप को लोकोत्तर मानते हैं। और विभावादि का सामाजिक से संबंध भी लोकोत्तर होता है। अभिनव गुप्त 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' के एक श्लोक का उदाहरण देते हुए इसको स्पष्ट करते हैं कि आश्रय मृग-शावक और आलंबन दुष्यंत दोनों के साधारणीकृत होने से आश्रय का स्थायी भाव भी देशकाल, व्यक्ति के संबंध से मुक्त हो जाता है। इस स्थिति में भय को किसी इकाई से संबद्ध नहीं किया जा सकता है। सामाजिक को यह प्रतीति नहीं होती कि यह भय मेरा है, मैं भयभीत हूं अथवा भागता हुआ मृग शावक विशेष भयभीत है। भय उस मृग विशेष का है अथवा किसी शत्रु-मित्र तटस्थ का है। दरअसल वे यह मानते हैं कि साधारणीकरण विभावादि

से पूरी तरह से संबंध हीनता की स्थिति नहीं है। सहृदय का संबंध विभावादि से रहता है लेकिन वह 'साधारण' संबंध रहता है। वे स्पष्ट करते हैं कि 'रस प्रतीति में सामाजिक का आत्मा न अत्यंत तिरस्कृत होता है न विशेष रूप से उल्लिखित'। इसका अर्थ यही है कि रस प्रतीति में सहृदय न तो सर्वथा तटस्थ रहता है, न अत्यंत व्यक्ति संबद्ध। तन्मयता प्राप्त करने की क्षमता सामाजिक में सहृदयता से आती है।

- स्थायी भाव के साधारणीकरण से अभिप्राय देश-काल के बंधन और व्यक्ति संसर्ग से मुक्ति है। दृश्य अथवा काव्य में ऐसी शक्ति होती है कि वह सहृदय को कब, कहाँ, कैसे और किन के बीच है यह भुलाकर प्रस्तुति में डुबा सकता है। निश्चय ही यह शक्ति सभी दृश्य और काव्य में नहीं होती। अभिनव गुप्त साहित्य के विविध रूपों में साधारणीकरण की भिन्न-भिन्न सामर्थ्य पर भी विचार करते हैं। यानी नाटक (दृश्य विधा) और पाठ्य विधा (काव्य और कथा) सहृदय को अलग-अलग तरीके और अलग-अलग मात्रा में प्रभावित करने की सामर्थ्य रखते हैं। बहुत स्वाभाविक है कि साधारणीकरण की सामर्थ्य दृश्य विधा में सर्वाधिक होती है।

- अभिनव गुप्त के यहाँ सामूहिक साधारणीकरण की परिकल्पना भी है, जहाँ सिर्फ एक सहृदय भाव मुक्त नहीं होता बल्कि समस्त दर्शक समूह कृति का आस्वादन करते हैं। नाट्यायोजन के संबंध में दर्शक/सहृदय एक विशिष्ट विधि से आचरण करते हैं।

- दृश्य विधा को समूह के साथ (रंगमंच अथवा थियेटर में) देखने का अलग मनोविज्ञान होता है। अभिनव गुप्त तो यहाँ तक कहते हैं कि निरूपित आस्वादन विधि के अनुसार नाट्य दर्शन से अहृदय (जो सहृदय न हो) प्रेक्षक भी सहृदय बन जाते हैं और रसास्वादन करने लगते हैं।

7.4.2 आचार्य विश्वनाथ

साधारणीकरण के सिद्धांत पर चर्चा करने वाले आचार्यों में आचार्य विश्वनाथ का नाम महत्वपूर्ण है। उन्होंने साधारणीकरण पर विचार करते हुए अभिनव गुप्त की स्थापनाओं का समर्थन किया है। इनका विवेचन इस प्रकार है–

आचार्य विश्वनाथ रामादि मूल पात्रों के हृदयगत प्रेम इत्यादि भाव (पूज्य भाव होने के कारण) सहृदय के लिए आस्वाद कैसे बनते हैं जैसे प्रश्नों के प्रत्युत्तर में 'आश्रय के साथ प्रमाता के अभेद' का सिद्धांत प्रतिपादित करते हैं। उन्होंने साधारणीकरण का परिणाम प्रमाता (सहृदय) और आश्रय में अभेद स्थापना माना और अभेद स्थापना के अनंतर रसास्वाद की दशा को स्थापित किया। सामाजिक का यह अभेद संबंध केवल लौकिक पात्रों के साथ ही नहीं बल्कि समुद्र-लंघन जैसे मुश्किल कार्य के लिए लोकोत्तर उत्साह से संपन्न हनुमान जैसे अलौकिक पात्रों के साथ भी स्थापित हो जाता है। अलौकिक पात्र हनुमानादि के साथ साधारणीकृत होने की अवस्था में अर्थात मानसिक रूप से अभेद होने के कारण सहृदय में भी वैसे ही (तद्वत) उत्साह भाव संचरित होने लगता है जिसकी परिणति रस में हो जाती है।

वे विभावन के अलौकिक व्यापार को ही 'साधारणीकरण' स्वीकार करते हैं। रस प्रक्रिया में काव्य वर्णित विभावादि तथा स्थायी भाव भी विभावन व्यापार के समग्र प्रभाव से

BHDC-106.indd 95 19-03-2021 08:51:36

अपने-अपने वैशिष्ट्य का तिरोभाव कर 'साधारण' रूप से प्रतीत होते हैं। रसास्वाद के समय विभावादि द्वारा मम् अथवा ममेतर, अन्य के अथवा अन्य के नहीं जैसे संबंध विशेष का स्वीकार या अस्वीकार नहीं होता है। इसी प्रकार रति आदि स्थायी भाव साधारण रूप से प्रतीत होते हैं। अर्थात यद्यपि सहृदय के मन में आश्रय जैसे भाव उपजते हैं परंतु वह उसका अपना विशिष्ट भाव नहीं रहता बल्कि व्यक्ति संबंधों से मुक्त साधारणीकृत भाव अर्थात रस होता है। इस क्रम में विभावादि भी देशकाल से मुक्त होकर 'साधारण' हो जाते हैं।

आचार्य विश्वनाथ, अभिनव गुप्त के सामूहिक रसास्वाद के सिद्धांत से भी सहमत नहीं दिखाई देते। उन्होंने सभी सामाजिकों में समान वासना की अनिवार्यता से इनकार किया और जब एक समान वासना सभी सहृदय में नहीं होगी तो रसास्वाद भी सबका एक जैसा नहीं होगा।

7.4.3 पंडितराज जगन्नाथ

साधारणीकरण पर विचार करने वाले अगले आचार्य हैं– पंडितराज जगन्नाथ। इनका सिद्धांत कुछ नवीनता लिए हुए है। वे भट्ट नायक, अभिनव गुप्त इत्यादि के साधारणीकरण के सिद्धांत को नहीं मानते जबकि आचार्य विश्वनाथ के 'आश्रय के प्रमाता के साथ अभेद' के सिद्धांत से उनकी सहमति है। वे साधारणीकरण के स्थान पर 'दोष विशेष' के कारण प्रमाता का आश्रय के साथ अभेद मानते हुए रसास्वाद की प्रक्रिया की पूर्णता का सिद्धांत देते हैं। यह प्रश्न बहुधा उठता है कि विशिष्ट पात्र जैसे दुष्यंत और शकुंतला इत्यादि का प्रेम साधारण दर्शक और पाठक के रसास्वाद का विषय किस प्रकार बन सकता है?

पंडितराज जगन्नाथ काव्यास्वाद की प्रक्रिया को श्रव्य और दृश्य दोनों काव्यों के संदर्भ में विवेचित करते हैं। उनका मत है कि श्रव्य काव्य में कवि के द्वारा और दृश्य काव्य में नट के द्वारा विभावादि का प्रकाशन होता है। इसके पश्चात व्यंजना व्यापार से सहृदय के चित्त में एक विशेष प्रकार की भावना (दोष रूप) का उदय होता है, जिसे पंडितराज श्लोकोत्तर भावना' कहते हैं। इस भावना के उदय होने से सहृदय अपने को दुष्यंत समझने लगता है। इस स्थिति में उसे अपने को शकुंतला का प्रेमी समझने में कोई बाधा नहीं होती। भावना रूपी दोष के कारण कल्पित दुष्यंतत्व से आच्छादित सहृदय में कल्पित शकुंतला विषयक रति-भाव भी उत्पन्न हो जाता है। पंडितराज के अनुसार सहृदय में प्रकाशित यही रति (भाव) 'रस' है। यह उसी प्रकार होता है जैसे दूर से देखने पर और चमक के प्रभाव से सीपी को चांदी का टुकड़ा समझ लिया जाता है।

साधारणीकरण के सिद्धांत पर हिंदी के विद्वानों ने भी विचार किया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल, बाबू श्यामसुंदर दास, बाबू गुलाब राय, डॉ. नगेंद्र जैसे विद्वानों ने भी साधारणीकरण पर व्यवस्थित रूप से विचार-विमर्श किया है।

7.5 सारांश

रस निष्पत्ति का सूत्र है–'विभावानुभाव व्यभिचारी संयोगाद्रस निष्पत्तिः' जिसका अर्थ है विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव के संयोग से रस निष्पत्ति होती है। रस निष्पत्ति कहाँ होती है तथा संयोग और निष्पत्ति शब्द के अर्थ क्या हैं? इस पर संस्कृत काव्यशास्त्र के चार आचार्यों के भिन्न-भिन्न मतों का हमने अध्ययन किया है। संस्कृत

काव्यशास्त्र के चार आचार्यों के मत का संक्षेप इस तालिका से समझा जा सकता है– साधारणीकरण काव्यास्वाद की प्रक्रिया है जिससे असाधारण, साधारण हो जाता है। पात्र की विशिष्टता का लोप हो जाता है और दर्शक या पाठक भी मैं और ममेतर से मुक्त हो जाता है। इसी दशा में रस का अलौकिक आनंद प्राप्त होता है। अभिनवगुप्त विभावादि के साथ स्थायी भाव का भी साधारणीकरण मानते हैं। सहृदय का विभावादि से संबंध 'साधारण' रहता है। स्थायी भाव से साधारणीकरण का अभिप्राय देश-काल के बंधन और व्यक्ति संसर्ग से मुक्ति है। अभिनव गुप्त के यहाँ सामूहिक साधारणीकरण की भी परिकल्पना है। आचार्य विश्वनाथ साधारणीकरण के सिद्धांत में आश्रय के साथ प्रमाता का अभेद स्वीकार करते हैं। पंडितराज जगन्नाथ 'आश्रय के साथ प्रमाता का अभेद' के सिद्धांत को 'दोष-विशेष' के साथ स्वीकार करते हैं।

7.6 अवधारणात्मक शब्द

अनुसंधान : समानता के कारण नटादि में रामत्व का आरोप।

अनुमाप्य-अनुमापक : जिसका अनुमान किया जाए अर्थात रस – जिसके द्वारा अनुमान किया जाए अर्थात विभावादि।

अनुकृति : अनुकरण (नकल)।

उत्पाद्य : जिसका उत्पादन हो– यहाँ तात्पर्य रस से है।

उत्पादक : जो उत्पादन करे– यहाँ तात्पर्य विभावादि से है।

कवि निबद्ध : कवि द्वारा रचा हुआ।

व्यंजक : जिस शब्द के द्वारा व्यंजना शक्ति से अर्थ निकलता है, उसे व्यंजक कहते हैं।

व्यंग्य : व्यंजना शक्ति से जो अर्थ निकलता है उसे व्यंग्य कहते हैं।

सहृदय : तन्मय भाव से काव्य का आस्वाद ग्रहण करने वाला। रस निष्पति के प्रसंग में सुमनस, प्रेक्षक, प्रमाता, सामाजिक आदि शब्दों का भी प्रयोग मिलता है। काव्य अथवा नाटक का आस्वाद ग्रहण करने वाले पाठक और दर्शक की विशिष्टता को ये सभी शब्द अभिव्यक्ति देते हैं।

विभावादि : विभाव, अनुभाव एवं संचारी भाव।

प्रमाता : दृष्टा (यहाँ तात्पर्य सहृदय से ही है जो नाटक का दृष्टा है)।

षाडव : षाडव छः स्वरों वाला राग होता है। यहाँ षाडव का तात्पर्य छः प्रकार के रस या स्वाद (मधुर, लवण, तिक्त, कटु, कषाय और अम्ल) के समुचित परिपाक से है।

7.7 उपयोगी पुस्तकें

रस सिद्धांत, डॉ. नगेंद्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस।

भारतीय काव्यशास्त्र : मूल समस्याएँ, संपादक –कृष्णबल, राधाकृष्ण प्रकाशन।

भारतीय काव्यशास्त्र, डॉ. तारकनाथ बाला, वाणी प्रकाशन।

BHDC-106.indd 97 19-03-2021 08:51:36

भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र की पहचान, प्रो हरिमोहन, वाणी प्रकाशन।

साधारणीकरण और सौंदर्यानुभूति के प्रमुख सिद्धांत, डॉ. प्रेमकांत टंडन, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद।

चिंतामणि भाग-1, रामचंद्र शुक्ल, इंडियन प्रेस पब्लिकेशन, इलाहाबाद।

रस विमर्श, डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन।

7.8 बोध प्रश्न

1) रस निष्पत्ति क्या है? भट्टनायक द्वारा की गई व्याख्या की चर्चा कीजिए।

2) साधारणीकरण के संदर्भ में अभिनवगुप्त के मत की विवेचना कीजिए।

3) आचार्य विश्वनाथ द्वारा साधारणीकरण की व्याख्या पर विचार कीजिए।

4) पंडित राज जगन्नाथ द्वारा प्रस्तुत साधारणीकरण संबंधी मत की विवेचना कीजिए।

5) साधारणीकरण का आशय स्पष्ट कीजिए।

7.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1) देखिए उपभाग 7.2.3

2) देखिए उपभाग 7.2.4

3) देखिए उपभाग 7.4.2

4) देखिए उपभाग 7.4.3

5) देखिए भाग 7.3

BHDC-106.indd 98 19-03-2021 08:51:36